कर्मचारी राज्य बीमा निगम

बनाम

एच.एम.टी. लिमिटेड व अन्य

(सी०ए० नंबर 340/2008)

जनवरी 11, 2008

(जस्टिस एस०बी० सिन्हा व जस्टिस जे०एम० पांचाल)

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948- एस०एस० 85-बी और 2(17)- अधिनियम के तहत देय अभिदाय जमा करना नियोक्ता द्वारा जमा में देरी- शास्ति लगाना- अभिनिर्धारित किया गयाः सभी मामलों में अनिवार्य नहीं है- धारा 85 बी एक सक्षम प्रावधान प्रदान करता है- इसमें शास्ति की अनिवार्य वसूली की परिकल्पना नहीं की गई है- जब एक सक्षम प्रावधान के कारण दंडात्मक शास्ति लगाने के लिए एक वैधानिक प्राधिकारी को विवेकाधीन क्षेत्राधिकार प्रदान किया जाता है, तो इसे अनिवार्य नहीं माना जा सकता है- विनियम 31 सी की व्याख्या विधायी अधिनियम में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए की जाएगी न कि उसी भाषा को ध्यान में रखते हुए- कर्मचारी राज्य बीमा (सामान्य) विनियम, 1950- विनियम 31 सी।

विधि की व्याख्या- अधीनस्थ विधायन- अभिनिर्धारित किया गया हैः विधायी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए।

शास्ति/नुकसान-अधिरोपित-के लिए आवश्यक सामग्री- अभिनिर्धारित किया गया हैः किसी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करने के लिए आपराधिक मनःस्थिति या एक्टस रीस का अस्तित्व, नुकसान की वसूली के लिए एक आवश्यक घटक है।

प्रत्यर्थी-नियोक्ता कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के तहत देय योगदान के संबंध में नियत अवधि के भीतर देय राशि जमा करने में विफल रहा। अपीलकर्ता-निगम ने विलंबित भुगतान के लिए ब्याज के भुगतान का दावा किया और इसके अलावा अधिनियम की धारा 85 बी के संदर्भ में शास्ति भी लगायी गई।

उच्च न्यायालय ने माना कि यद्यपि विलंब की अवधि दो साल से थोड़ी अधिक थी, अभिदाय जमा करने के लिए कुछ उचित समय दिया जाना चाहिए और इस प्रकार, ब्याज के भुगतान की अवधि को केवल दो साल तक सीमित की गई। इसके अतिरिक्त यह माना गया कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, कोई नुकसान नहीं वसूलने का निर्देश दिया जाना चाहिए क्योंकि अधिनियम की धारा 85-बी एक सक्षम प्रावधान प्रदान करती है और हर मामले में नुकसान वसूलना अनिवार्य नहीं बनाती है।

इस न्यायालय में प्रस्तुत अपील में, यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय उक्त निर्णय पारित करते समय कर्मचारी राज्य बीमा (सामान्य) विनियम, 1950 के विनियमन 31 सी के कथित प्रभाव पर विचार करने में विफल रहा, जो ब्याज लगाने व नुकसान के संबंध में प्रावधान करता है।

इस प्रकार वर्तमान अपील में अधिनियम की धारा 85-बी और विनियम 31 सी की व्याख्या और अनुप्रयोग प्रश्नगत है।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए मामले को उच्च न्यायालय में पुनः विचार करने हेतु वापस भेज दिया।

अभिनिर्धारित किया गया किः-

1.1 अधिनियम की धारा 85-बी एक सक्रिय प्रावधान प्रदान करती है। इसमें जुर्माने की अनिवार्य वसूली के संबंध में प्रावधान नहीं किया गया है। यह नियमों के तहत निर्धारित तरीके से क्षति की मात्रा की गणना के संबंध में भी प्रावधान नहीं करता है।

1.2 एक कर्मचारी को अनिवार्य रूप से बीमा कराने की आवश्यकता होने के कारण, नियोक्ता अपने हिस्से का अभिदाय देने के लिए बाध्य है। एक कर्मचारी भी अधिनियम के तहत अपना अभिदाय देने के लिए बाध्य है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सभी स्थितियों में शास्ति लगाना अनिवार्य होगा।

1.3 अधिनियम की धारा 85-बी में 'वसूली हो सकती है' शब्दों का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत शास्ति की वसूली जुर्माने के माध्यम से होती है। विधानमंडल ने प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र को जुर्माना लगाने तक सीमित कर दिया, अर्थात बकाया राशि से अधिक वसूली नहीं की जा सकती। इसलिए विनियमों के विनियम 31 सी को, हमारी राय में, विधायी अधिनियम 1950 में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए, न कि उसी भाषा को ध्यान में रखते हुए। यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि अधीनस्थ विनियम विधायी अधिनियम के अनुरूप होना चाहिए।

1.4 दंडात्मक प्रावधान का प्रयोग सख्ती से किया जाना चाहिए। केवल इसलिए कि शास्ति अधिरोपित करने का प्रावधान किया गया है, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि सभी परिस्थितियों में शास्ति अधिरोपित की जानी चाहिए। विधायिका की ओर से ऐसी कोई मंशा अधिनियम की धारा 85 बी के अध्ययन से प्रतीत नहीं होती है। जब एक विवेकाधीन प्रावधान के कारण दंडात्मक क्षति वसूलने के लिए एक वैधानिक प्राधिकारी को विवेकाधीन क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है, तो इसे अनिवार्य नहीं माना जा सकता है। अन्यथा भी, ऐसे दंड प्रावधानों को विवेकाधीन मानने का प्रयास किया जाना चाहिए, जब तक कि विधि द्वारा उसे अनिवार्य प्रावधानित ना किया जाये।

1.5 अधिनियम स्वयं यह नहीं कहता कि शास्ति केवल निर्धारित तरीके से लगाया जाना चाहिए। यह ऐसा मामला भी नहीं है जहां प्राधिकारी के पास कोई विवेकाधिकार नहीं बचा है। कानून यह प्रावधान नहीं करता है कि शास्ति लगाने की कार्यवाही के प्रयोजन के लिए निर्णय महज औपचारिकता होगी या शास्ति लगाना होगा और साथ ही उसकी मात्रा की गणना भी एक पूर्व निष्कर्ष बन जाएगी। आम तौर पर, यदि कार्यवाही न्यायिक है या उसके तहत प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है, तो ऐसे प्रावधान को अनिवार्य रूप से शास्ति लगाने के प्रावधान के लिए भी नहीं माना जाएगा।

1.6 वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करने के लिए आपराधिक मनःस्थिति या एक्टस रियूस की मौजूदगी को भी शास्ति और/या उसकी मात्रा वसूलने के लिए एक आवश्यक घटक माना जाना चाहिए।

हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (1998) 2 एस०सी०सी० 242- को अंतर किया गया।

प्रेस्टोलाइट (इंडिया) लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय निदेशक और अन्य, (1994 सप्लिमेंट (3) एससीसी 690) तथा दिलीप एन० श्रॉफ बनाम संयुक्त आयकर आयुक्त, मुंबई एवं अन्य ((2007) 6 एससीसी 329)- को रेफर किया गया।

2. अतः हमारी राय में, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच की यह राय गलत नहीं थी कि धारा 85-बी एक सक्षम प्रावधान प्रदान करती है। हालाँकि, इस बात की सराहना नहीं की जा सकती कि इस तरह के कंस्ट्रसन से ही यह निष्कर्ष निकलेगा कि उच्च न्यायालय वैधानिक प्राधिकार के स्थान पर अपना दृष्टिकोण रखने का हकदार है। इसलिए, हमारे विचार में, इस मामले पर उपरोक्त वर्णित टिप्पणियों के आलोक में क्षति की मात्रा आदि के निर्धारण के लिए नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील संख्या 340/2008

बैंगलोर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय की रिट अपील संख्या 2587/2004 में पारित अंतिम निर्णय व आदेश दिनांकित 12.09.2005 से।

सी.एस. राजन, वी.जे. फ्रांसिस तथा अनुपम मिश्रा- अपीलार्थी की ओर से।

सी.वी. फ्रांसिस, जी. प्रकाश तथा संजय आर. हेगडे- प्रत्यर्थी की ओर से।

इस न्यायालय का निर्णय जस्टिस एस.बी. सिन्हा द्वारा पारित किया गया। अनुमति स्वीकृत।

1. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम ('अधिनियम') की धारा 85 बी और कर्मचारी राज्य बीमा (सामान्य) विनियम 1950 ('विनियम') के

विनियम 31 सी की व्याख्या और अनुप्रयोग इस अपील में प्रश्नगत है, जो कि कर्नाटक उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ की रिट अपील संख्या 2587/2004 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 12.09.2005 से सृजित हुआ है, जिसमें कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा आंशिक रूप से उक्त न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट पीटिशन संख्या 38753/1998 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 25.03.2000 की अपील को स्वीकार किया गया है।

2. अधिनियम की धारा 2(17) के प्रावधान के तहत प्रत्यर्थी एक 'नियोक्ता' है। निर्विवादित रूप से, दिनांक 27.03.1992 की अधिसूचना जारी होने से पहले, कर्मचारियों की वेतन सीमा 1600/- रूपये प्रतिमाह तक सीमित थी, उन्हें अधिनियम के दायरें में लाने के उद्देष्य से उसे बढ़ाकर 3000/- रूपये प्रतिमाह कर दिया गया।

3. उक्त अधिसूचना की वैधता को कर्मचारी द्वारा कई सारे रिट याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश द्वारा उक्त अधिसूचना के क्रियान्वयन पर स्थगन लगाने के निर्देश दिये गये थे। उक्त रिट याचिकाएं दिनांक 05.08.1992 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी।

4. 'कर्मचारियों' द्वारा अपने संबंधित ट्रेड यूनियनों के माध्यम से रिट अपील दायर की गई। उक्त अपीलों को स्वीकार करते हुये, रिट

याचिका के लंबित रहने के दौरान लागू अंतरिम आदेश को जारी रखने की अनुमति दी गई।

उक्त रिट अपीलों को भी उच्च न्यायलाय की डिवीजन बेंच द्वारा दिनांक 11.07.1995 के एक फैसले और आदेश के आधार पर खारिज कर दिया गया था, इस आधार पर कि प्रत्यर्थी के लिए संबंधित कर्मचारियों के योगदान को जमा करने में कोई बाधा नहीं थी।

5. उक्त तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक ब्याज का दावा किया गया था। इसके बाद अपीलकर्ता ने विलंबित भुगतान के लिए ब्याज के भुगतान का दावा भी किया और अधिनियम की धारा 85-बी के संदर्भ में जुर्माना भी लगाये जाने का अनुतोष चाहा।

6. प्रत्यर्थी द्वारा दिनांक 09.06.1998 को उक्त नोटिस की वैधता को चुनौती देते हुये दायर की गई एक रिट याचिका को भी दिनांक 25.03.2000 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। अपीलकर्ता द्वारा एक पुनरवलोकन याचिका दायर की गई। जिसे भी गुणावगुण पर खारिज कर दिया गया।

उक्त आदेश के विरूद्ध एक इंट्रा कोर्ट अपील की गई, जिसे आंशिक रूप से स्वीकार करते हुये यह टिप्पणी दी गई किः

1. यद्यपि विलंब की अवधि दो वर्ष से थोड़ी अधिक है, फिर भी अभिदाय जमा करने के लिए कुछ युक्तियुक्त समय की अनुमति

दी जानी चाहिए और इस प्रकार, ब्याज के भुगतान की अवधि को केवल दो वर्ष तक सीमित रखा जाना चाहिए।

2. प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये कोई नुकसान (क्षतियों) नहीं वसूलने का निर्देश दिया जाना चाहिए क्योंकि अधिनियम की धारा 85-बी एक सक्रिय प्रावधान है तथा प्रत्येक मामले में नुकसान वसूलना अनिवार्य नहीं बनाती है।

7. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी.एस. राजन ने यह तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय ने आलौच्य निर्णय पारित करने में एक गंभीर त्रुटि की है क्योंकि वह विनियमों के विनियम 31 सी के कथित प्रभाव पर विचार करने में विफल रहा है जो कि ब्याज और हर्जाना वसूलने के लिए प्रावधान करता है।

8. वहीं दूसरी ओर प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सी.वी. फ्रांसिस द्वारा उक्त आलौच्य निर्णय का समर्थन किया गया।

9. उक्त अधिनियम किसी प्रतिष्ठान के कर्मचारियों को बीमारी, प्रसूति और नियोजन-क्षति के मामले में कतिपय प्रसुविधाओं का उपबंध करने और उनके संबंध में कुछ अन्य मामलों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

10. अधिनियम का अध्याय IV अंशदान के भुगतान का प्रावधान करता है। अधिनियम की धारा 39 'नियोक्ता' और 'कर्मचारी' दोनों द्वारा योगदान के भुगतान को निर्धारित करती है।

11. अधिनियम की धारा 85-बी निगम को उस स्थिति में हर्जाना वसूलने का अधिकार देती है जब कोई नियोक्ता योगदान के संबंध में देय राशि का भुगतान करने में विफल रहता है; हालाँकि, इस शर्त के अधीन कि उसकी राशि विनियमों में निर्दिष्ट बकाया राशि से अधिक नहीं होगी। इसके प्रोविजो में 'प्राकृतिक न्याय' के सिद्धांतों को शामिल किया गया है।

12. नियोक्ता की ओर से 'नियोक्ता' और 'कर्मचारी' दोनों का अभिदाय जमा करने की बाध्यता हस्तगत प्रकरण में विवादित नहीं है।

विवाद यह है कि क्या विनियम 31 सी में विनिर्दिष्ट क्षति की राशि अनिवार्य है या नहीं।

यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि एक अधीनस्थ विधायन को विधायी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए। अधिनियम की धारा 85-बी एक सक्रिय प्रावधान प्रदान करती है। इसमें जुर्माने की अनिवार्य वसूली के संबंध में प्रावधान नहीं किया गया है। यह नियमों के तहत निर्धारित तरीके से क्षति की मात्रा की गणना के संबंध में भी प्रावधान नहीं करता है।

13. नियोक्ता का वैधानिक दायित्व हस्तगत प्रकरण में विवादित नहीं है। एक कर्मचारी को अनिवार्य रूप से बीमा कराने की आवश्यकता होने के कारण, नियोक्ता अपने हिस्से का अभिदाय देने के लिए बाध्य है। एक कर्मचारी भी अधिनियम के तहत अपना अभिदाय देने के लिए बाध्य है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सभी स्थितियों में शास्ति लगाना अनिवार्य होगा।

14. अधिनियम की धारा 85-बी में 'वसूली हो सकती है' शब्दों का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत शास्ति की वसूली जुर्माने के माध्यम से होती है। विधानमंडल ने प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र को जुर्माना लगाने तक सीमित कर दिया, अर्थात बकाया राशि से अधिक वसूली नहीं की जा सकती। इसलिए, विनियमों के विनियम 31 सी को, हमारी राय में, विधायी अधिनियम में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए, न कि उसी भाषा को ध्यान में रखते हुए।

15. हालाँकि, हमारा ध्यान हिंदुस्तान टाइम्स लिमिटेड बनाम भारत संघ ((1998) 2 सेकंड 242) में इस न्यायालय के एक निर्णय की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है किः

> "उपरोक्त निर्णयों से, निम्नलिखित सिद्धांतों को संक्षिप्त किया जा सकता हैः

धारा 14 बी के तहत प्राधिकरण को प्रकरण के तथ्यों तथा कारण बताओ नोटिस के जवाब के संबंध में अपना मस्तिष्क का प्रयोग करना चाहिए तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों तथा सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किये जाने के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुये एक तर्कसंगत आदेश पारित करना होता है। क्षेत्रीय भविष्य निधि आयोग द्वारा आमतौर पर चूक की संख्या, देरी की अवधि, चूक की आवृत्ति और इसमें शामिल रकम को ध्यान में रखा जाता है; बिजली-कटौती, अन्य से संबंधित वित्तीय समस्याओं की दलील के आधार पर नियोक्ता की ओर से चूक, ऋणग्रस्तता या चेक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान की गई राशि की वसूली में देरी, नियोक्ता के लिए दायित्व से बचने का उचित आधार नहीं हो सकता है; धारा 14-बी के तहत क्षति की वसूली के लिए कार्रवाई शुरू करने के लिए विधायिका द्वारा कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं है।"

16. हालाँकि, यह राय दी गई कि कुछ परिस्थितियों में, नियोक्ता कई वर्षों के बाद क्षतिपूर्ति की मांग किए जाने पर 'अपूरणीय पूर्वाग्रह' का लाभ दिये जाने का दावा कर सकता है। उस मामले में, यह न्यायालय, लंबे समय के बाद हर्जाना लगाने के प्रभाव के संबंध में उत्पन्न प्रश्न से चिंतित

था। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ विचार के लिए जो प्रश्न उठा, वह यह था कि क्या स्वतः संज्ञान से पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा अपनी इच्छानुसार किसी भी समय किया जा सकता है। न्यायालय ने नियोक्ता से 'पैसे की वसूली' से जुड़े मामलों के बीच अंतर किया, जिसने ट्रस्ट और अन्य मामलों में श्रमिकों द्वारा किए गए अभिदाय को रोक दिया था। यह उस स्थिति में था जो ऊपर व्यक्त की गई है। हमें यहां ऐसी स्थिति से कोई सरोकार नहीं है।

17. दंडात्मक प्रावधान का प्रयोग सख्ती से किया जाना चाहिए। केवल इसलिए कि शास्ति अधिरोपित करने का प्रावधान किया गया है, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि सभी परिस्थितियों में शास्ति अधिरोपित की जानी चाहिए। विधायिका की ओर से ऐसी कोई मंशा अधिनियम की धारा 85-बी के अध्ययन से प्रतीत नहीं होती है। जब एक मदंइसपदह प्रावधान के कारण दंडात्मक क्षति वसूलने के लिए एक वैधानिक प्राधिकारी को विवेकाधीन क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है, तो इसे अनिवार्य नहीं माना जा सकता है। अन्यथा भी, ऐसे दंड प्रावधानों को विवेकाधीन मानने का प्रयास किया जाना चाहिए, जब तक कि विधि द्वारा उसे अनिवार्य प्रावधानित ना किया जाये।

18. प्रेस्टोलाइट (इंडिया) लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय निदेशक और अन्य (1994 सप्लिमेंट (3) एससीसी 690) में, इस न्यायालय ने कर्मचारी बीमा

के क्षेत्रीय निदेशक द्वारा उठाए गए इस तर्क को खारिज कर दिया कि कर्मचारी राज्य बीमा सामान्य विनियमन के तहत प्रदान की गई दिशानिर्देश में यह निर्देषित किया गया है कि विलंबित भुगतान के लिए शास्ति कैसे लगाया जाएगा और चूंकि ऐसे दिशानिर्देशों का पालन किया गया है, इसलिए विवादित निर्णय में कोई अपवाद नहीं लिया जाना चाहिए, जिसमें कहा गया हैः

> "भले ही नियमों में सामान्य दिशानिर्देश और ऊपरी सीमा निर्धारित की गई हो, जिस पर शास्ति लगायी जा सकती है, यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि किसी भी मामले में, मामले को अंतिम रूप से तय करते समय निर्णायक प्राधिकारी द्वारा कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार नहीं किया जा सकता है। तालिका की उच्चतम सीमा को लागू करने में यांत्रिक रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है। हस्तगत मामले में, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि आदेश बिना किसी युक्तियुक्त कारण दर्शाये पारित कर दिया गया है कि विलंबित भुगतान के लिए आधार क्यों स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा कोई संकेत नहीं दिया गया कि आदेश में विनिर्दिष्ट दर पर हर्जाना लगाने की आवश्यकता क्यों थी। सिर्फ इसलिए कि अपीलकर्ता व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं हुआ और आपत्तियों नहीं उठाई गई,

कर्मचारी के मामले को सीमित समय में खारिज नहीं किया जा सकता था। इसके विपरीत, आपत्ति पर गुणावगुण पर विचार किया जाना चाहिए था।“

19. डिफिप एन. श्रॉफ बनाम संयुक्त आयकर आयक्त, मुंबई एवं अन्य ((2007) 6 एससीसी 329), के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है किः

“40. इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि इस संबंध में अलग-अलग न्यायिक दृष्टांत मौजूद है जो स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित करते हैं कि दंड के प्रश्न पर विचार करते समय, मनःस्थिति (mens rea) एक प्रासंगिक तथ्य नहीं है। यहाँ तक कि यदि यह मान भी लिया जाये कि जब विधि द्वारा यह स्थापित है कि यदि कोई व्यक्ति गलत विवरण प्रस्तुत करता है तो वह दंड के लिए उत्तरदायी होगा, यदि दिए गए विवरण गलत पाए जाते हैं तो इसे अपने आप में पर्याप्त माना जा सकता है या नहीं, लेकिन सवाल अभी भी यह होगा कि क्या किसी अनुमोदित मूल्यांकनकर्ता के कुछ मूल्यांकन पर निर्भरता रखी गई है और इसलिए, गलत विवरण प्रस्तुत करना जानबूझकर नहीं था, जिसका अर्थ है कि जुर्माना लगाने से पहले मनःस्थिति के एक तत्व की आवश्यकता है, इस न्यायालय के बड़ी संख्या में निर्णयों

के आलोक में इस पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए था।"

20. हम इस मत से इसलिए भी सहमत है कि अधीनस्थ विधियन प्रमुख विधायी प्रावधान को ऑवरराईड नहीं कर सकता।

अधिनियम स्वयं यह नहीं कहता कि शास्ति केवल निर्धारित तरीके से लगाया जाना चाहिए। यह ऐसा मामला भी नहीं है जहां प्राधिकारी के पास कोई विवेकाधिकार नहीं बचा है। कानून यह प्रावधान नहीं करता है कि शास्ति लगाने की कार्यवाही के प्रयोजन के लिए निर्णय महज औपचारिकता होगी या शास्ति लगाना होगा और साथ ही उसकी मात्रा की गणना भी एक पूर्व निष्कर्ष बन जाएगी। आम तौर पर, यदि कार्यवाही न्यायिक है या उसके तहत प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है, तो ऐसे प्रावधान को अनिवार्य रूप से शास्ति लगाने के प्रावधान के लिए भी नहीं माना जाएगा।

21. वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन करने के लिए आपराधिक मनःस्थिति या एक्टस रियूस की मौजूदगी को भी शास्ति और/या उसकी मात्रा वसूलने के लिए एक आवश्यक घटक माना जाना चाहिए।

22. इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच की यह राय गलत नहीं थी कि धारा 85-बी एक सक्षम प्रावधान प्रदान करती है। हालाँकि, इस बात की सराहना नहीं की जा सकती कि इस तरह के

कंस्ट्रशन से ही यह निष्कर्ष निकलेगा कि उच्च न्यायालय वैधानिक प्राधिकार के स्थान पर अपना दृष्टिकोण रखने का हकदार है। इसलिए, हमारे विचार में, इस मामले पर उपरोक्त वर्णित टिप्पणियों के आलोक में क्षति की मात्रा आदि के निर्धारण के लिए नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए।

23. अतः हमारी राय है कि आलौच्य निर्णयों को कायम नहीं रखा जा सकता है। इसे तदनुसार खारिज किया जाता है और मामले को इसमें की गई टिप्पणियों के आलोक में नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय में भेजा जाता है। उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, कोस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील स्वीकृत।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सिद्धान्त सक्सेना (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।